International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(2): 68-72

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(2): 68-72
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 05-11-2017
Accepted: 09-12-2017

डॉ. आराधना सारवान
व्याख्याता (हिन्दी), राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत

Corresponding Author:
डॉ. आराधना सारवान
व्याख्याता (हिन्दी), राजकीय शास्त्री संस्कृत महाविद्यालय, अलवर, राजस्थान, भारत

हिन्दी साहित्य में दलित नारियों के मानवीय मूल्य

डॉ. आराधना सारवान

प्रस्तावना

सदियों से नारी अपने मानव मूल्यों के लिए तरशती रहीं हैं । आज इक्कीसवीं सदी में भी विश्व की आधी आबादी कही जाने वाली नारी पग-पग पर ब्राह्मणवादी विचारधारा के अनुसार अन्याय पर आधारित इस सामाजिक व्यवस्था में तथा पुरुषवादी मानसिकता के कारण अपने वास्तविक मूल्य की तलाश कर रही है । क्योंकि एक तरफ तो पुरुष प्रधान समाज में नारी को पुरुषों के सामन हमेशा तुच्छ स्थिति में ही रखा गया है तो दूसरी तरफ धर्मशास्त्रों की रीति रुपी डोरी इनके पैरों में डाली जाती रही है । परिणामतः घर और परिवार की सेवा करना तथा नैतिक मर्यादाओं का पग पग पर पालन करना नारी का अनिवार्य कर्तव्य बना दिया गया । इन परम्पराओं और मर्यादाओं की डोरी से नारी इस तरह बंध गयी कि वे स्वयं इस बात को नहीं समझ सकी कि सदियों से जिन मूल्यों में नारी को गढ़ा गया उससे हटकर उनके वास्तविक मूल्य है ? वस्तुतः सम्पूर्ण नारी समाज की यह स्थिति रही है किन्तु उच्चवर्ग की महिलाओं की अपेक्षा दलित वर्ग की महिलायें अपने मूल्यों के लिए अधिक तरशती रही हैं ? क्योंकि वे सदियों से दोहरा संताप उठाती रही हैं ।

मनुवादी विचाराधारा के साथ समाज में फैली विषमतावादी सामाजिक व्यवस्था की शिकार दलित महिलाएँ ही अधिक बनती आ रही है । अतः दलित स्त्रियाँ भारतीय समाज व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर रही हैं । उन्हें सवर्ण समाज द्वारा दबाया या सताया ही नहीं गया अपितु दलित पुरुष भी स्वयं मनुवादी मानसिकता में बंधकर उन्हें अनेक प्रकार की यातनाएं देता रहा है । परिणामस्वरुप दलित महिलाएं कभी भी आगे आकर अपने मूल्यों के लिए सोच ही नहीं सकी ।

डा० भीमराव अम्बेडकर कहा करते थे कि "मैं दलित समाज की प्रगति का मापन इस बात से करता हूँ कि दलित नारी ने कितनी प्रगति की हैं[1]" । किन्तु अफसोस है कि अपने पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कठोर परिश्रम करने वाली दलित महिलाओं को स्वयं उसके समाज के पुरुषों ने ही उनके मूल्यों को नहीं समझा और न ही सही रुप में पुरुषों की मित्र, सहयोगिनी या सहगामिनी समझी गयी परिणामतः नारी के प्रति सद्भाव, मित्र भाव समानता की मानसिकता कभी समाज में पनप ही नहीं सकी। इसलिए जयप्रकाश कर्दम का यह कथन जो उन्होंने पूनम तुषामड़ के काव्य संग्रह 'माँ मुझे मत दो' की भूमिका में लिखा है बिल्कुल सत्य प्रतीत होता है "इस संग्रह की कविताएं सामाजिक जीवन के उस यथार्थ से साक्षात्कार कराती हैं जहाँ स्त्री और दलित मनुष्य की परिधि से बाहर है ।

दलित अपमान, शोषण और अस्पृश्यता के शिकार हैं तो स्त्री भी उपेक्षिता है । दोनों स्वतंत्रता और मानवीय अधिकारों से वंचित हैं[2]" ।

सुशीला टाकभौरे भी दलित पुरुषों की मानसिकता की सच्चाई की उजागर करते हुए कहती हैं "समाज की विषमतावादी व्यवस्था के शिकार दलित पुरुष स्वयं भी मनुवादी मानसिकता से ग्रसित होकर अपनी स्त्रियों पर अत्यधिक अत्याचार करते रहे, जिससे दलित महिलाएं कभी आगे आने के बारे में नहीं सोच पाई । घर-परिवार की जिम्मेदारी निभाते हुए अपने पुरुषों के कंधे से कंधा मिलाकर कठोर परिश्रम करने वाली दलित महिला समाज में कभी पुरुषों समान अधिकार नहीं पा सकी[3]" ।

इसलिए अपने मानवीय मूल्यों एवं अधिकारों से वंचित दलित कवियत्रियों ने पितृसत्तात्मक मूल्यों और ब्राह्मणवादी व्यवस्था की चक्की में पिसने वाली नारी समुदाय के मूल्यों को अपनी कविताओं में प्रमुख स्थान दिया है क्योंकि इन्होंने स्वयं इस दंश को झेला था । इसलिए नारी मूल्यों का हनन करने वाले हर व्यवस्था पर दलित कवियत्रियों ने तीव्र प्रहार किया है और नारी को उसके वास्तविक मूल्यों को समझाया है । ओमलता जी के शब्दों में "सामाजिक कुप्रथाएं, अंधविश्वास, रूढियां पितृसत्तात्मक चुनौतियां किस तरह स्त्री को उसकी आजादी से बेदखल करती हैं, उसकी सोच के पर कुतर देती है, उसके सपनों को राख कर देती हैं उसकी ख्वाहिशों का गला घोट देती हैं, उसे पददलित कर विकल्पों के सारे दरवाजे बंद कर देती हैं - उनकी इसी बेचैनी की त्रासद स्थितियाँ उन रचनाओं में सशक्त तरीके से अभिव्यक्त पाती हैं[4]" ।

हिन्दी साहित्य की दलित महिला कवयित्रियों ने अपने भोगे हुए जीवन के कटु यथार्थ को अपनी कविता में समावेशित किया है जो कि भारतीय समाज व्यवस्था और पुरुषवादी मानसिकता की पोल खोलती हुई नजर आती है । एक ही रथ के दो पहिये होने के बावजूद महिलाओं को वे मूल्य नहीं मिले जिन मूल्यों की वो हकदार हैं और हमेशा स्त्री पुरुष के अधीन ही रहती हैं । पिता पति और पुत्र के द्वारा थोपी गई थोथी व्यवस्थाओं और धर्मशास्त्रों द्वारा लादी गई नैतिक मर्यादाओं के अधीन रहते हुए शोषण, कुपोषण, उपेक्षा और अपमान का जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं । देवी का रूप मानकर भी उनका शोषण किया जाता रहा है और उसे पराधीनता की बेड़ियों में जकड़ कर रखा गया है । यही कारण है कि कमोवेश स्त्री आज भी दलित वर्ग के अन्तर्गत ही आती हैं । इसलिए इन दलित कवयित्रियों ने नारी को उनके यथार्थ स्थिति से अवगत कराके उसे दासता की जिन्दगी से बाहर निकालकर उन्हें उनके वास्तविक मूल्यों की प्राप्ति कराने के लिए उन्हें चेतना से लैश करती नजर आती हैं । धर्म और रीति-रिवाज तथा नैतिकता और परम्पराओं के नाम पर किस प्रकार एक नारी को पराधीन बनाये रखा जाता है इसे सुशीला जी इन शब्दों में व्यक्त करती हैं -

"रहन सहन, रीति-रिवाज और परम्पराओं की बात
सब उसे बेबस बनाए रखने की चाल है ।
इसी से वह बेहाल है[5]" ।

इन्हीं रूढ़ियों के कारण ही नन्हीं बेटी को दुर्गा देवी का रूप मानकर उसके चरण धोकर पिये जाते हैं लेकिन बाद में इन्हीं बेटियों का परम्पराओं और नैतिकता के नाम पर भयानक शोषण किया जाता है । इसलिए सुशीला जी कहती हैं कि उन्हें उनके वास्तविक मूल्यों की प्राप्ति के लिए जब तक उन्हें योग्य न बनाया जाय तब उन्हें उन पर गर्व होना चाहिये -

"हमें गर्व होता है जब हम अपनी ही नन्ही बेटी के
चरण धोकर पीते हैं
धर्म के नाम पर, इस रूप में कि
वह दुर्गा है, देवी है, शक्ति है ।
गर्व तब होना चाहिए
जब हम उसे शक्तिशाली करें
आक्रोशमयी करें
अपने लक्ष्य की ओर आवेगमयी करें[6]" ।

इस स्थिति के कारण ही नारी की मानसिकता कुछ इस तरह बन जात है कि वह अपने को कमजोर समझने लगती है और हीन भावना उसके भीतर घर कर जाती है । इसी स्थिति को सुशीला जी अपनी कविता स्त्री में इस प्रकार व्यक्त करती हैं -

"वह सोचती है -
लिखते समय कलम को झुका ले
बोलते समय बात को सँभाल ले
और समझने के लिए
सबके दृष्टिकोण से देखे
क्योंकि वह एक स्त्री है[7]" ।

वस्तुतः परम्पराओं, रीति-रिवाजों और मर्यादाओं के नाम पर जिस प्रकार की निषेधाज्ञा स्त्रियों पर लाद दिया जाता है कि स्वयं के उनके मूल्य किसी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकते और न ही उसकी कोई अस्मिता रह जाती है । स्त्री परम्पराओं का पालन करती हुई अपनी बेटी को ही संस्कृति और परम्परा नाम पर उसे उसके अधिकारों से बेदखल कर देती है । 'पूनम तुषामड़' इसलिए लिखती है -

"वही तो है
हमारे बुढापे की लाठी ।
इन आँखों का तारा
उनकी बातें
मुझे अंदर तक
लील जातीं ।
इस तरह मेरी मां
मेरी मां न रह कर
संस्कृति और परम्परा की
पोषक बन जाती
और मुझे
मेरे सब अधिकारों से
स्वयं... बेदखल कर जाती[8]" ।

लेकिन पूनम तुषामड़ की नारी यह प्रश्न करती है कि मर्यादा और परम्परा के नाम पर कब तक उसके स्वतंत्रता और समानता जैसे मूल्यों का हरण होता रहेगा । कब तक वह शोषण की चक्की में पिसती रहेगी कब तक वह घर के अन्दर और बाहर दोनों जगह असुरक्षित रहेगी -

"आखिर कब तक रहेगा
यह असुरक्षा बोध ?
कब मिलेगा हमें भी
स्वतंत्र उड़ने को
यह स्वच्छ नीला आसमान[9]" ।

एक नारी अपने स्वतंत्रता और समानता जैसे मूल्यों की बात यूं ही नहीं करती । उसे ये पता है कि सदियों से धर्म, सेवा और त्याग के नाम पर उसे पुरुष समाज की कठपुतली बनाये रखा गया है । रजनी तिलक 'न जाने कब से' कविता में यही कहती हैं -

"यूँ ही नहीं हुई भयभीत मैं
अचानक ही नहीं टूटा ये मनोबल
सदियों से मेरे खिलाफ
एक धुआंदार वातावरण पला है
चप्पे चप्पे पर मुझे
सुनने, पढने, देखने को मिला
स्त्री का 'धर्म' सेवा और त्याग है
पुरुष हित में ही तेरा हित निहित है
यही तो मेरे मर्म की जड़ है
शायद यही है वो सच
जो मेरे मर्म की जड़ है[10]"।

धर्म, सेवा और त्याग के नाम पर ही स्त्रियों को समाज में बोलने, हंसने और खाने पीने तक की पाबन्दी है और यदि वो इस दायरे से बाहर जाती हैं तो पुरुषों की या परिवार की सम्मान रूपी मिट्टी का वह ढाँचा गिर जाता हैं । जिसे इन्होंनें मजबूती से जकड़ा था और रजत रानी 'मीनू' जी कहती हैं कि तब स्त्रियों पर अंगुलियां उठने लगती हैं -

"नहीं पंसद
किसी को मेरी आजाद अभिव्यक्ति
लगा देते हैं मुझ पर आरोप सदियों पुराना
मेरे सिर पर बाँध दिया जाता है
होश संभालते ही इज्जत का सेहरा
जो मेरे बोलने, हँसने, चलने खाने-पीने से
गिर जाता है, मिट्टी के लोध की तरह ।
सब की उँगलियां उठ जाती हैं, मेरी ओर[11]"।

यद्यपि सम्पूर्ण स्त्री जाति की स्थिति कमोवेश ऐसी ही है किन्तु यदि दलित स्त्री हो तो उसके दुःख दर्द का दायरा और भी बढ़ जाता हैं क्योंकि वह दोहरे अभिशाप से अभिशप्त होती रहती हैं । एक दलित स्त्री के मूल्यों का हरण होता है तो वह किस दर्द और उपेक्षा का शिकार होती है इस पूनम तुषामड़ ने अपनी कविता 'अम्मा' में इस प्रकार व्यक्त किया है –

"वह तो एक दलित स्त्री है
जो इतिहास के पन्नों
और धर्मग्रंथों के
श्लोकों में नहीं मिलती
वह मिलती है दलित बस्ती में
अपने दर्द को छिपाए
हाथ में झाड़ू और सिर पर टोकरी उठाए" ।

दलित स्त्री और सवर्ण स्त्री के अन्तर को रजनी तिलक जी भी महसूस करती हैं इसलिए वे कहती हैं कि औरत औरत होती है बिना किसी धर्म क मजहब के एक ही प्रसव पीड़ा और यातनायें सहती हैं परन्तु एक बिरादरी और स्वयं सर्वहारी होते हुए भी दलित और सवर्ण स्त्री में यह अन्तर होता है -

"एक भंगी तो दूसरी बामणी
एक ढोम तो दूसरी ठकुरानी
दोनों सुबह से शाम खटती हैं
बेशक, एक दिन भर खेत में
दूसरी घर की चार दीवारी में
शाम को एक सोती है बिस्तर पे
तो दूसरी काँटों पर ।
प्रसव पीड़ा झेलती फिर भी एक सी
जन्मती है एक नाले के किनारे
दूसरी अस्पताल में,

एक पायलाट है
तो दूसरी शिक्षा से वंचित है,
एक सत्ताहीन है,
तो दूसरी निर्वस्त्र घुमायी जाती है ।
औरत औरत में भी अन्तर है[12]" ।

दलित और सवर्ण स्त्री के अन्तर को रजनी तिलक जी बताती जरूर हैं । लेकिन ये मानते हुए कि सदियों से इस पीड़ा बेचैनी एवं यातना को सभी वर्ग की महिलाओं ने सहा है - शील, शर्म, मर्यादा के नाम पर । इसलिए कुन्ती अपनी कविता 'घेरे में स्त्री' में यह प्रश्न करती हैं कि ये सारी वर्जनाएं एवं नियम महिलाओं के लिए ही क्यों उसकी पीड़ा संवेदना एवं मूल्यों को कोई नहीं समझता -

"स्त्री के लिए ही क्यूं हैं वर्जनाएं
सतीत्व, शील, शर्म, मर्यादा
क्यों है एक घेरे में स्त्री
क्या अलग है स्त्री से
उसका शरीर, उसकी भावनाएं
घुटन में ही जीते रहने के कैद
क्यूं नहीं पहुँचता कोई
इसकी जड़ तक जहाँ पनप रही है
पीड़ा सिर्फ पीड़ा[13]"।

इसी दर्द, पीड़ा और बेचैनी को महसूस किया है और स्वयं भोगा भी है सुशीला टाकभौरे जी ने इसलिए 'तुमने उसे कब पहचाना' कविता में एक नारी की दुर्दशा उसके पैरो में धर्मशास्त्रो द्वारा डाली गयी नीति एवं मर्यादा की बेडियाँ सामाजिक विषमता एवं रुढियाँ तथा पुरुष मानसिकता आदि को उजागर करके नारी मूल्यों के तलाश के लिए पुरुष सत्ता को चुनौती दी गयी है -

"तुमने उसे कब पहचाना ?
क्यों कहते हो नारी को मानव समाज का गहना !
चंदन वन की शाख मटियारे चूल्हे में जलती रही,
नारी होने की परीक्षा वह हर पल देती रही[14]" ।

सदियों से चली आ रही परम्पराओं और नैतिकता के नाम पर स्त्री के मूल्यों का हरण तो होता ही रहा है इसके अलावा लिंग भेद की विषमता भी स्त्रियों के मूल्यों को हरण करने का एक तरीका है । स्त्री को सैकेंड सेक्स माना जाता है जो एक स्त्री की मानसिकता को बार-बार उद्वेलित करती रहती है कि सृष्टि की रचयिता होने के बावजूद भी नारी को पुरुषवादी व्यवस्था के कार बार-बार धिक्कारा जाता है । वस्तुतः नारी को उसके वास्तविक मूल्य की प्राप्ति होने में उसकी सबसे बड़ी बाधा हैं यह पुरुषवादी व्यवस्था क्योंकि पुरुष अपने लाभ के लिए ही केवल स्त्रियों को दोहरा स्वरुप चाहता है । पुरुष की यह सोच और दुहरापन ही है कि वह नहीं चाहता की स्त्री अपनी इस परिधि से बाहर निकले । वह सदैव उसे अपनी अंगुलियों में नचाना चाहता है ताकि समाज पुरुष प्रधान हमेशा बना रहे और स्त्री स्वावलम्बी न हो पाये ।

आज इक्कीसवीं सदी में जब पूरा विश्व उत्तर आधुनिकता के दौर में डूबा है ऐसे समय में स्त्री को उसके वास्तविक मूल्यों की प्राप्ति होना आवश्यक है क्योंकि नारी की उन्नति के बिना परिवार समाज और राष्ट्र की उन्नति संभव नहीं है इसलिए दलित कवयित्रियों ने स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया है क्योंकि शिक्षा ही वह हथियार है जिससे वे समाज और पुरुषवादी मानसिकता का जवाब देते हुए अपने मूल्यों को प्राप्त कर सकती हैं ।

शिक्षा ही वह हथियार है जिसके माध्यम से वह घिसी पिटी परिपाटी को जानकर अपने जीवन के अंधकार को मिटा सकती है और अपने मूल्यों की प्राप्ति कर सकती हैं । इसलिए रजनी तिलक कहती हैं -

"पढ़ मनुस्मृति, उलट महाभारत, पलट रामायण ।
पढ़ कानून - मिटा तिमिर, लगा हलकार ।
पढ़ समजशास्त्र, बन सावित्री फहरा शिक्षा का परचम[15]" ।

अपने बीते हुए क्षणों और दुःख दर्द को याद रखकर ही हम अपने मूल्यों का प्राप्त कर सकते हैं सुशीला जी मानती हैं कि अंबेडकर और बुद्ध द्वारा दिखाये शिक्षा के मार्ग को ही स्त्री मूल्यों के लिए ठीक मानती हैं ।

सावित्री बाई फूले लड़कियों के लिए एक मिशाल हैं क्योंकि सर्वप्रथ उन्होंने ही अनेक समस्याओं और अपमानों को झेलकर बाह्मणी समाज को दुत्कारा था और शूद्र स्त्रियों के मान, स्वाभिमान को जगाया और दलित स्त्रियों के लिए शिक्षा की राह खोली थी इसलिए रजनी तिलक जी उन्हें अपनी कविता को समर्पित करते हुए कहती हैं -

"दलित और पद-दलित स्त्रियों को
तुमने ककहरा ही नहीं सिखाया
भर दिया था उनमें विद्रोह
छेड़ा था एक द्वंद, एक जेहाद
पोंगा-पुरोहितों व वेद शास्त्रों के खिलाफ[16]" ।

सावित्री बाई फूले एक ऐसा उदाहरण है जो यह सीख देती हैं कि अपने मूल्यों की प्राप्ति के लिए स्वयं लड़ना होगा । इसलिए ज्ञान प्राप्ति के लिए याचना नहीं अपितु संघर्ष और श्रम करो कोई तुम्हें अंधेरे से बाहर नहीं निकालेगा ।

आज इक्कीसवीं सदी में अपने मूल्यों के लिए स्त्री संघर्ष कर रहीं है । इसलिए आज पूरे विश्व में यह आवश्यक है कि पुरुष और समाज स्त्रियों के प्रति अपनी सोच को बदले क्योंकि स्त्रियों को इस पुरुषवादी मानसिकता से मुक्ति चाहिये न कि पुरुष से । इसके लिए सोच को बदलने की जरुरत है और शिद्दत से उसे निभाने की । इसके अभाव में महिला सशक्तिकरण वर्ष (2001) घोषित कर देना या अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस घोषित करने से कोई फायदा नहीं हैं क्योंकि असंख्य स्त्रियों को तो ये पता ही नहीं हैं कि उनके सम्मान का भी कोई दिन है-

"बहुसंख्य-स्त्रियाँ
नहीं जानतीं
कि उनके सम्मान
का कोई
एक दिन भी होता है।
उनकी हालतोड़
मेहनत का कोई मूल्य देता है[17]" ?

इस प्रकार से स्त्री उसके मूल्यों की प्राप्ति के लिए स्त्री और पुरुष को अपने बीच की विभाजन रेखा को मिटाना होगा । साथ ही उन झूठी परम्पराओं, रीति-रिवाजों और मर्यादाओं से स्त्री को मुक्त करना होगा, जिसने सदियों से उन्हें कैद में कर रखा है । स्त्री को स्वयं अपने मूल्यों के प्रति सचेत होना होगा, जिसके लिए शिक्षा नितान्त ही आवश्यक है ।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ. रजत रानी 'मीनू' – हिन्दी दलित कविता, पृ. – 78, सं. – 2009.
2. पूनम तुषामड़, माँ मुझे मत दो की भूमिका से, पृ. - 9, सं. – 2010.
3. ओमलता, समकालीन परिदृश्य में स्त्रीवादी कविता, पृ. – 56.
4. ओमलता, समकालीन परिदृश्य में स्त्रीवादी कविता, पृ. – 56.
5. डॉ. सुशीला टाकभौरे, तुमने उसे कब पहचाना, पृ. – 84, सं. – 2006.
6. डॉ. सुशीला टाकभौरे, यह तुम भी जानो, पृ. – 27, सं. – 1994.
7. डॉ. सुशीला टाकभौरे, यह तुम भी जानो, पृ. – 31, सं. – 1994.
8. पूनम तुषामड़, माँ मुझे मत दो, पृ. – 58,59, सं. – 2010.
9. पूनम तुषामड़, माँ मुझे मत दो, पृ. – 23, सं. - 2010
10. रजनी तिलक, हवा सी बेचैन युवतियाँ, पृ. – 75-76, सं. – 2015.
11. डॉ. रजत रानी 'मीनू', पिता भी तो होते हैं माँ, पृ. – 131-132.
12. पूनम तुषामड़, माँ मुझे मत दो, पृ. – 35, सं. – 2010.
13. रजनी तिलक, पदचाप, पृ. – 41, 42, सं. – 2002.
14. सुशीला टाकभौरे, तुमने उसे कब पहचाना, पृ. – 60, सं. – 2006.
15. रजनी तिलक, पदचाप, पृ. – 5, सं. – 2002.
16. रजनी तिलक, पदचाप, पृ. – 2, सं. – 2002.
17. डॉ. रजत रानी 'मीनू', पिता भी होते हैं माँ, पृ. – 41, सं. – 2005.